नालन्दा राजनीतिक नहीं, राष्ट्रीय मुद्दा है

नालंदा विश्वविद्यालय के रूप में प्राचीन भारत के सबसे बड़े ज्ञान केंद्र के लुप्त हो चुके इतिहास को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से नालंदा विश्वविद्यालय अधिनियम, 2010 को लोकसभा में पारित किया गया और एक सपने को आकार देने की दिशा में सार्थक प्रयत्न शुरु हुआ, लेकिन चांसलर जॉर्ज यो ने विश्वविद्यालय की स्वायत्तता का मुद्दा उठाते हुए अपने पद से इस्तीफा देकर राष्ट्रीयता एवं शिक्षा-संस्कृति से जुड़ी बड़ी परियोजना को धुंधलाया है। 13वीं शताब्दी में ध्वस्त कर दिये गये शिक्षा के इस सबसे बड़े केन्द्र को पुनर्जीवित करने के सपने को इससे गहरा आघात लगा है।

यह आघात दूसरी बार लगा है, इससे पहले नोबल विजेता अर्थशास्त्री अमत्र्य सेन भी कमोबेश इन्हीं वजहों से इस प्रॉजेक्ट से हट चुके हैं। जॉर्ज यो के इस तरह इस्तीफा देने या अमत्र्य सेन के इस महत्वपूर्ण परियोजना से हट जाने की घटना से अनेक सवाल खड़े हुए हैं। एक बड़ा प्रश्न तो यह है कि भारत के एक बड़े संकल्प को इस तरह क्यों आहत होना पड़ रहा है। ऐसे भारत की अस्मिता एवं विरासत से जुड़ा उपक्रम राजनीति का शिकार होने को क्यों विवश हुआ? नालंदा विश्वविद्यालय के विचार और संस्कृति को प्रतिबिंबित करने का संकल्प कोई छोटा संकल्प नहीं है, इस तरह के कार्यों को राजनीति से दूर ही रखा जाना चाहिए। इस तरह की राष्ट्रीय मुख्यधारा से जुड़ी परियोजनाओं के लिये गैर-राजनीतिक व्यवस्थाएं अपेक्षित हंै। क्योंकि राष्ट्रीय मुख्यधारा को बनाने एवं सतत प्रवाहित करने में और करोड़ों लोगों को उसमें जोड़ने में अनेक महापुरुषों ने खून-पसीना बहाकर इतिहास लिखा है। राष्ट्रीय मुख्यधारा न तो आयात होती है, न निर्यात। और न ही इसकी परिभाषा किसी शास्त्र में लिखी हुई है। हम देश, काल, परिस्थिति एवं राष्ट्रहित को देखकर बनाते हैं, जिसमें हमारी संस्कृति, विरासत सांस ले सके। नालन्दा विश्वविद्यालय हमारे देश की संस्कृति है, गौरवमय विरासत है, राष्ट्रीयता का प्रतीक है। यह एक बहुआयामी एवं बहुउद्देशिय परियोजना है, यह राजनीतिक नहीं, राष्ट्रीय मुद्दा है।

चांसलर जॉर्ज यो नालन्दा विश्वविद्यालय की परियोजना के आधार स्तंभ थे। कैंब्रिज से ग्रेजुएशन और हार्वर्ड से एमबीए करने वाले जॉर्ज यो ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने सबसे पहले 2006 में भारत सरकार को नालंदा विश्वविद्यालय के पुनरुद्धार का आधिकारिक प्रस्ताव दिया था। सिंगापुर के विदेश मंत्री रह चुके यो इस प्रॉजेक्ट के साथ शुरू से ही जुड़े थे। अमत्र्य सेन को इस परियोजना के साथ जोड़ना और उन्हें चांसलर बनाना अन्तर्राष्ट्रीय अपेक्षाओं को देखते हुए लिया गया निर्णय था। बतौर चांसलर एक टर्म पूरा करने के बाद 2015 में अमत्र्य सेन ने दूसरे टर्म के लिए अपनी दावेदारी यह कहते हुए वापस ले ली कि भारत सरकार उन्हें इस पद पर नहीं देखना चाहती। सरकार ने न केवल उनकी इस राय को बदलने की कोशिश नहीं की, चुपचाप उन्हें पद से हट जाने दिया, बल्कि इसके कुछ ही समय बाद उन्हें विश्वविद्यालय के गवर्निंग बोर्ड से भी हटा दिया। इन घटनाओं ने इस बड़े प्रॉजेक्ट के भविष्य पर सवालिया निशान लगा दिये हैं।

शिक्षा के मामले में भारतीय इतिहास प्रखर है। नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना करीब 2500 साल पहले बौद्ध धर्मावलम्बियों ने की थी। यह विश्वविद्यालय न केवल कला, बल्कि शिक्षा के तमाम

पहलुओं का अभिनव केन्द्र था। 'वास्तविकता में यह वही 'ज्ञान रूपी उपहार' है, जिसका अभ्यास भारतीय विद्वान नालंदा में किया करते थे। जब नालंदा अपने शिखर पर था, तब विभिन्न देशों के लगभग 10 हजार से अधिक विद्यार्थी यहां रहकर अध्ययन किया करते थे। यही नहीं, यहां शिक्षकों की संख्या 1500 से अधिक थी। यहाँ अध्ययनरत छात्र न केवल बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण करते थे, बल्कि उनकी शिक्षा में अन्य संस्कृतियों और धार्मिक मान्यताओं का समावेश था। नालंदा विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य ऐसी पीढ़ियों का निर्माण करना था, जो न केवल बौद्धिक बल्कि आध्यात्मिक हों और समाज के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकें। करीब 833 वर्ष पूर्व आक्रमणकारियों के हाथों तबाह हुए इस विश्व विख्यात विश्वविद्यालय के नए स्वरूप-अंतर्राष्ट्रीय नालंदा विश्वविद्यालय को भारत के लिये गौरवपूर्ण घटना कहा जा सकता है।

कितने ही स्वप्न अतीत बने। कितने ही सूर्य अस्त हो गए। कितने ही नारे गूँजे- "स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है", "वन्दे मातरम्", "भारत छोड़ो", "पूर्ण-स्वराज्य" – भारत की अस्मिता एवं अस्तित्व को बचाने के लिये। आज जो हमारे सामने उजाला है वह करोड़ों-करोड़ों के संकल्पों, कुर्बानियों एवं त्याग से प्राप्त हुआ है। आजादी किसी एक ने नहीं दिलायी। एक व्यक्ति किसी देश को आजाद करवा भी नहीं सकता। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की विशेषता तो यह रही कि उन्होंने आजादी को राष्ट्रीय संकल्प और तड़प बना दिया। आज भी इस उजाले को छीनने के कितने ही प्रयास हुए, हो रहे हैं और होते रहेंगे। उजाला भला किसे अच्छा नहीं लगता। आज हम बाहर से बड़े और भीतर से बौने बने हुए हैं। इस बौनेपन का ही असर है कि हम अपनी गौरवमयी विरासत को जीवंत करने के संकल्प में कहीं-ना-कहीं भटक रहे हैं। यह स्थिति बहुत दुर्भाग्यपूर्ण और भयानक है।

एक अरब से अधिक के राष्ट्र को नालन्दा कह रहा है कि मुझे आकाश जितनी ऊंचाई दो, मेरे से जुड़े संकल्प को आकार दो। क्योंकि उसी से भारत एक बार पुनः विश्वगुरु बन सकेगा। नालन्दा, तक्षशिला एवं विक्रमशिला जैसे गुरुकुलों के कारण ही भारतीय संस्कृति विश्व में पूजनीय बनी। इन्हीं के कारण भारतीय बच्चे प्राचीन काल से ही आचार्य देवो भवः का बोध-वाक्य सुनकर ही बड़े होते हैं। माता-पिता के नाम के कुल की व्यवस्था तो सारे विश्व के मातृ या पितृ सत्तात्मक समाजों में चलती है, परन्तु गुरुकुल का विधान भारतीय संस्कृति की अनूठी विशेषता है। कच्चे घड़े की भांति स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को जिस रूप में ढालों, वे ढल जाते हैं। वे स्कूल में जो सीखते हैं या जैसा उन्हें सिखाया जाता है, वे वैसा ही व्यवहार करते हैं। उनकी मानसिकता भी कुछ वैसी ही बन जाती है, जैसा वह अपने आस-पास होता देखते हैं। सफल जीवन के लिए शिक्षा बहुत उपयोगी है, जो गुरु द्वारा प्रदान की जाती है। गुरु का संबंध केवल शिक्षा से ही नहीं होता, बल्कि वह तो हर मोड़ पर अपने छात्र का हाथ थामने के लिए तैयार रहता है। उसे सही सुझाव देता है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

ये प्राचीन उच्च शैक्षणिक संस्थान उस माली के समान थे, जो एक बगीचे को भिन्न-भिन्न रूप-रंग के फूलों से सजाता थे। जो छात्रों को कांटों पर भी मुस्कुराकर चलने को प्रोत्साहित करते थे। उन्हें जीने की वजह समझाते थे। इन शिक्षा के मन्दिरों के लिए सभी छात्र समान होते थे और वे सभी का कल्याण चाहते थे। यही वे शिक्षा के केन्द्र थे, जो विद्यार्थी को सही-गलत व अच्छे-बुरे की पहचान करवाते हुए

बच्चों की अंतर्निहित शक्तियों को विकसित करने की पृष्ठभूमि तैयार करते थे। वे प्रेरणा की फुहारों से बालक रूपी मन को सींचकर उनकी नींव को मजबूत करते थे तथा उसके सर्वांगीण विकास के लिए उनका मार्ग प्रशस्त करते थे। किताबी ज्ञान के साथ नैतिक मूल्यों व संस्कार रूपी शिक्षा के माध्यम से अच्छे चरित्र का निर्माण करते थे। इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिये ही समूची दुनिया भारत की ओर टकटकी लगाए हैं और इसीलिये नालंदा विश्वविद्यालय को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता महसूस हुई।

नालंदा विश्वविद्यालय के विचार को पुनर्जीवित करने की कोशिश एक असाधारण उपक्रम था, एक बड़ी चुनौती थी और उसका मूर्तरूप प्रकट होना आश्चर्य से कम नहीं कहा जा सकता है। वह दिन बिहार और देश-दुनिया के इतिहास में दिलचस्पी रखने वालों के लिए खास बना। तत्कालीन राष्ट्रपति डा. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने मार्च 2006 में बिहार विधानमंडल के संयुक्त सत्र को संबोधित करते हुए कहा था कि नालंदा विश्वविद्यालय को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। भारत ही नहीं बल्कि दुनिया की बड़ी शक्तियां भी यही चाहती है कि नालंदा विश्वविद्यालय पुनः आकार ले। भले ही वह भारत की एक ध्वस्त धरोहर हो, पर इसके पुनरुद्धार का प्रॉजेक्ट अकेले भारत सरकार का नहीं है। इसे 17 देशों का समर्थन हासिल है। उन सबके सहयोग से यह आगे बढ़ रहा है। विश्व स्तर का कोई ज्ञानकेंद्र स्थापित करना ऐसा काम होता भी नहीं, जिसे सीमित संसाधनों से पूरा कर लिया जाए। मगर, दुनिया के कोने-कोने से सभी संबद्ध व्यक्तियों का सहयोग और सदिच्छा हासिल करना कोई हंसी-खेल नहीं है। इसके लिए जिस तरह की जरूरतें होती है और उनके लिये सरकार से जो सहयोग अपेक्षित है, वैसा सहयोग देने की मानसिकता सरकारों में न होना दुर्भाग्यपूर्ण है।

विडम्बनापूर्ण तो यह भी है कि अमत्र्य सेन जैसे व्यक्ति से सरकार की आर्थिक नीतियों से असहमति के चलते उन्हें इस विश्वविद्यालय से विदा होना पड़ा। किन्हीं सरकारी नीतियों से सहमति या असहमति होना और एक खास विश्वविद्यालय के चांसलर के रूप में उसके कामकाज के मूल्यांकन से क्यो कोई लेना-देना होना चाहिए ? सरकार जब इस तरह की संकीर्णता प्रदर्शित करती है तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रतिष्ठित उच्च शैक्षणिक संस्थानों की संभावनाएं कैसे आकार ले सकेगी।

संपर्क

(ललित गर्ग)
ई-253, सरस्वती कुंज अपार्टमेंट
25 आई. पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-92
फोनः 22727486, 9811051133